

भद्रबाहु सम्बन्धी कथानकों का समीक्षात्मक अध्ययन

चरम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु जैनधर्म की सभी परम्पराओं के द्वारा मान्य रहे हैं। कल्पसूत्र स्थविरावलि के प्राचीनतम उल्लेख से लेकर परवर्ती ग्रन्थों के सन्दर्भों के आधार पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर आधुनिक युग में पर्याप्त उहापोह या विचार-विमर्श हुआ है, किन्तु उनके जीवनवृत्त और कृतित्व के सम्बन्ध में ईसा पूर्व से लेकर ईसा की पन्द्रहवीं शती तक लिखित विभिन्न ग्रन्थों में जो भी उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनमें इतना मत वैभिन्य है कि सामान्य पाठक किसी समीचीन निष्कर्ष पर पहुँच नहीं पाता है। भद्रबाहु के चरित्र लेखकों ने उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह अनुश्रुतियों एवं स्वैर कल्पनाओं का ऐसा मिश्रण है, जिसमें से सत्य को खोज पाना एक कठिन समस्या है। आर्य भद्र या भद्रबाहु नामक विविध आचार्यों के सम्बन्ध में जो कुछ अनुश्रुति से प्राप्त हुआ, उसे चतुर्दश पूर्वधर और द्वादशांगी के ज्ञाता श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर के सप्तम पट्टधर और दिगम्बर परम्परा के अनुसार अष्टम पट्टधर चरम श्रुतकेवली आर्य भद्रबाहु के साथ जोड़ दिया गया है। यही कारण है कि उनके जीवनवृत्त और कृतित्व के सम्बन्ध में एक भ्रमपूर्ण स्थिति बनी हुई है और अनेक परवर्ती घटनाक्रम और कृतियाँ उनके नाम के साथ जुड़ गई हैं।

ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओं में आर्य भद्रबाहु अथवा आर्यभद्र नामक अनेक आचार्य हुए हैं। परवर्ती लेखकों ने नाम साम्य के आधार पर उनके जीवन के घटनाक्रमों और कृतित्व को भी चरम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के साथ जोड़ दिया। मात्र यही नहीं, कही-कही तो अपनी साम्प्रदायिक मान्यताओं को परिपुष्ट करने के लिये स्व कल्पना से प्रसूत अंश भी उनके जीवनवृत्त के साथ मिला दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य हस्तीमल जी ने अपने ग्रन्थ 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' भाग २, पृष्ठ ३२७ पर जो कुछ लिखा है, वह निष्पक्ष एवं तुलनात्मक दृष्टि से इतिहास के शोधार्थियों के लिये विचारणीय है।

वे लिखते हैं— "भद्रबाहु के जीवन-चरित्रविषयक दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों का समीचीनतया अध्ययन करने से एक बड़ा आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट होता है कि न श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थों में आचार्य भद्रबाहु के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में मतैक्य है और न दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में ही। भद्रबाहु के जीवन सम्बन्धी दोनों परम्पराओं

के विभिन्न ग्रन्थों को पढ़ने से एक निष्पक्ष व्यक्ति को स्पष्ट रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः दोनों परम्पराओं के अनेक ग्रन्थों में भद्रबाहु नाम वाले दो-तीन आचार्यों के जीवन-चरित्रों की घटनाओं को गड्ढा-मड्ढा करके अन्तिम चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु के जीवन चरित्र के साथ जोड़ दिया गया है। पश्चाद्वर्ती आचार्यों द्वारा लिखे गये कुछ ग्रन्थों का, उनसे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्टरूपेण आभासित होता है कि भद्रबाहु के चरित्र में पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने अपनी कल्पनाओं के आधार पर कुछ घटनाओं को जोड़ा है। उन्होंने ऐसा अपनी मान्यताओं के अनुकूल वातावरण बनाने के अभिप्राय से किया अथवा और किसी अन्य दृष्टि से किया, यह निर्णय तो तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् पाठक स्वयं ही निष्पक्ष बुद्धि से कर सकते हैं।''

आचार्य भद्रबाहु के जीवनवृत्त एवं उनके नाम से प्रचलित कृतियों के सम्बन्ध में समीक्षात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का श्रेय जिन पाश्चात्य भारतीयविद्या-विदों को जाता है उनमें प्रोफेसर हर्मन जाकोबी प्रथम हैं। उन्होंने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया कि पाइत्र (प्राच्य) गोत्रीय श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु को निर्युक्तियों का कर्ता मानना भ्रान्ति है, क्योंकि निर्युक्तियाँ वीर निर्वाण संवत् ५८४ से ६०९ के बीच रचित हैं जबकि श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु तो वीर निर्वाण संवत् १६२ (दिगम्बर मान्यता) अथवा वीर निर्वाण संवत् १७० (श्वेताम्बर मान्यता) में स्वर्गस्थ हो चुके थे।^१ इस सम्बन्ध में समीक्षात्मक दृष्टि से जिन भारतीय विद्वानों ने चिन्तन किया है उनमें मुनि श्री पुण्यविजयजी, मुनि श्री कल्याणविजयजी, पं० मुखलालजी, पं० दलसुखभाई, आचार्य हस्तीमल जी, आचार्य महाप्रज्ञजी, साध्वीवर्या संघमित्राजी आदि प्रमुख हैं। दिगम्बर परम्परा के विद्वान् डॉ० राजाराम जी ने भी रङ्गकृत भद्रबाहु चरित्र (पन्द्रहवीं शती) की भूमिका में समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया है, फिर भी उन्होंने अपनी दृष्टि को दिगम्बर स्रोतों को प्रामाणिक मानते हुए उन्हीं पर विशेष रूप से केन्द्रित रखा है, जबकि आचार्य हस्तीमल जी, मुनिश्री कल्याणविजयजी और साध्वी संघमित्राजी ने दोनों परम्परा के मूलस्रोतों का अध्ययन कर अपना समीक्षात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया है।

विशेष रूप से निर्युक्तियों के कर्ता के प्रश्न को लेकर प्रो० हर्मन जाकोबी, मुनि पुण्यविजय जी, आचार्य हस्तीमलजी, आचार्य महाप्रज्ञ जी, समणी कुसुमप्रज्ञा जी एवं स्वयं मैंने भी समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किये हैं, इनमें समणी कुसुमप्रज्ञाजी को छोड़कर शेष सभी इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि निर्युक्तियाँ प्राच्य गोत्रीय आचार्य भद्रबाहु की कृतियाँ नहीं हैं। किन्तु वे किसकी कृतियाँ हैं इस सम्बन्ध में इन सभी के बीच भी मतवैभिन्य है। इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे भद्रबाहु के कृतित्व के सम्बन्ध में विचार करते समय करेंगे।

आचार्य भद्रबाहु का जीवनवृत्त

श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु प्रथम के दीक्षा पर्याय के पूर्व के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्राचीन आगमिक प्रमाण प्रायः अनुपलब्ध हैं। कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्र की स्थविरावली में उनका जो निर्देश मिलता है, उसमें कल्पसूत्र में उनके गुरु के रूप में यशोभद्र का, शिष्यों के रूप में गोदास, अग्निदत्त, जिनदत्त और सोमदत्त का उल्लेख है। साथ ही भद्रबाहु के शिष्य गोदास से गोदासगण प्रारम्भ होने और उसकी ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षीया, पौण्ड्रवर्द्धनिका और दासीखर्बटिका नामक चार शाखाएँ होने का निर्देश है।³ यहाँ उनके गृही जीवन से सम्बन्धित दो ही तथ्य उपलब्ध होते हैं— एक तो यह कि उनका गोत्र पाइत्र था, क्योंकि कल्पसूत्र, नन्दीसूत्र और दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति तीनों में ही उनके गोत्र को 'पाइत्र' कहा गया है। इस उल्लेख की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई भी शंका नहीं की जा सकती है क्योंकि उपलब्ध सूचनाओं में ये निर्देश प्राचीनतम और सभी ईसा की पांचवीं शती के पूर्व के हैं फिर भी 'पाइत्र' का जो अर्थ पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्यों एवं विद्वानों ने किया है वह मुझे समुचित प्रतीत नहीं होता है। प्रायः सभी ने इसका संस्कृत रूपान्तरण 'प्राचीन' माना है जिसका अर्थ पुरातन होता है और इसी आधार पर आचार्य हस्तीमल जी ने तो यह सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया है कि "किसी परवर्ती भद्रबाहु की अपेक्षा पूर्ववर्ती होने से उन्हें प्राचीन कहा गया है।"⁴ किन्तु मेरी दृष्टि में 'पाइत्र' का अर्थ पौर्वात्य अर्थात् प्राची या पूर्व दिशा का निवासी करना चाहिये। मध्यप्रदेश के ब्राह्मणों में आज भी औदीच्य नामक एक वर्ग है जो अपने को पूर्व दिशा से आया हुआ मानता है। सरयूपारी, पुरवइयां आदि भी पौर्वात्य ब्राह्मण जातियाँ हैं इससे यह भी फलित होता है— भद्रबाहु भारत के अथवा बिहार के पूर्वीय प्रदेश बंगाल के निवासी थे। उनकी शिष्य परम्परा में कोटिवर्षीया, पौण्ड्रवर्द्धनिका और ताम्रलिप्तिका आदि जो शाखाएँ बनी हैं वे उन्हीं नगरों के नाम पर हैं, जो बंगाल में विशेष रूप से उसके पूर्वी भाग में स्थित थे, अतः भद्रबाहु के पाइत्र नामक गोत्र का फलितार्थ यह है कि वे पौर्वात्य ब्राह्मण थे।

भद्रबाहु के जन्म-स्थान को लेकर उनसे सम्बन्धित परवर्ती कथानकों में वैविध्य एवं विसंवाद की स्थिति है। कल्पसूत्र, नन्दीसूत्र, दशाश्रुतस्कन्ध की निर्युक्ति, तित्थोगालीपइत्रा, गच्छाचारपइत्रा आदि प्राचीन स्तर के श्वेताम्बर ग्रन्थों में उनके जन्म स्थान का कोई उल्लेख नहीं है। परवर्ती श्वेताम्बर ग्रन्थों— गच्छाचार की दोषद्वीवृत्ति और प्रबन्धकोश⁵ में उन्हें प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान पैठन, महाराष्ट्र) का निवासी बताया है। प्रबन्धचिन्तामणि में यद्यपि भद्रबाहु के निवास स्थान का तो कोई उल्लेख नहीं है— किन्तु उनके तथाकथित भाई वराहमिहिर को पाटलिपुत्र का निवासी कहा गया है।⁶ ज्ञातव्य है कि प्रतिष्ठानपुर जहाँ दक्षिण महाराष्ट्र में है, वहाँ पाटलीपुत्र (पटना) उत्तर बिहार में है इस प्रकार जन्म स्थान को लेकर श्वेताम्बर स्रोतों में विप्रतिपत्ति है। दिगम्बर

परम्परा के ग्रन्थ भावसंग्रह में उन्हें उज्जैन के साथ जोड़ा गया है।^{१०} पुत्राटसंघीय यापनीय हरिषेण ने अपने ग्रन्थ बृहत्कथाकोष (ई. ९३२) में भद्रबाहु के जीवनवृत्त का उल्लेख किया है— उनके अनुसार प्राचीन काल में पुण्ड्रवर्धन राज्य के कोटिपुर नगर में (देवकोट्ट) में राजपुरोहित सोमशर्मा की धर्मपत्नी सोमश्री की कुक्षि से भद्रबाहु का जन्म हुआ। किन्तु उन्होंने भी इस कोटिपुर को उज्जयिन्त पर्वत (गिरनार) के मार्ग में कहीं गुजरात में स्थित मान लिया है— जो भ्रान्ति है।^{११} वस्तुतः यह कोटिपुर न होकर कोटिवर्ष था, जो बंगाल में पुण्ड्रवर्धन के समीप स्थित रहा होगा। कोटिवर्ष के भद्रबाहु के जन्म स्थान होने की सम्भावना हमें सत्य के निकट प्रतीत होती है, क्योंकि आगमों में भद्रबाहु के शिष्य गोदास से प्रारम्भ हुए गोदासगण की दो शाखाओं का नाम कोटिवर्षीया और पौण्ड्रवर्धनिका के रूप में उल्लिखित है। रत्नन्दी ने अपने भद्रबाहुकथानक में जन्म-स्थान और माता-पिता के नाम आदि के सम्बन्ध में प्रायः हरिषेण का ही अनुसरण किया है। रङ्ग ने अपने भद्रबाहुकथानक में माता-पिता और राजा आदि के नाम तो वही रखे किन्तु कोटिपुर को कउत्तुकपुर (कौतुकपुर) कर दिया है।^{१२}

जन्म-स्थल एवं निवास क्षेत्र के इन समस्त उल्लेखों की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः पाइन्न गोत्रीय श्रुतकेवली भद्रबाहु का जन्म-स्थल पौण्ड्रवर्धन देश का कोटिवर्ष नगर ही रहा है, किन्तु हरिषेण ने उसे जो गुजरात में स्थित माना, वह भ्रान्तिपूर्ण है। वस्तुतः यह नगर बंगदेश के उत्तर-पूर्व में और चम्पा (आधुनिक भागलपुर) से दक्षिण-पूर्व में लगभग १०० किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। श्वेताम्बर आचार्यों ने प्रबन्धकोश आदि में जो उसे प्रतिष्ठानपुर से समीकृत किया है, वह भी भ्रान्त है। उसका सम्बन्ध नैमित्तिक भद्रबाहु, जो वराहमिहिर के भाई थे, से तो हो सकता है, किन्तु श्रुतकेवली भद्रबाहु से नहीं हो सकता है।

जहाँ तक भद्रबाहु के विचरण क्षेत्र का प्रश्न है— श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार उनका विचरण क्षेत्र उत्तर में नेपाल के तराई प्रदेश से लेकर दक्षिण बंगाल के ताम्रलिपि तक प्रतीत होता है। उनके द्वारा १२ वर्ष तक नेपाल की तराई में साधना करने का उल्लेख तित्थोगालीपइत्रा (तीर्थोद्गालिक प्रकीर्णक-लगभग ५वीं-६ठी शती) एवं आवश्यक चूर्णों (७वीं शती) आदि अनेक श्वेताम्बर स्रोतों में प्राप्त होता है।^{१३} यद्यपि दिग्म्बर स्रोतों से इस सम्बन्ध में कोई सङ्केत उपलब्ध नहीं होता है, फिर भी इसकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद नहीं लगती है।

जहाँ तक उनकी दक्षिण यात्रा का प्रश्न है— इस सम्बन्ध में श्वेताम्बर स्रोत प्रायः मौन हैं, दिग्म्बर स्रोतों में भी अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं। भावसंग्रह में आचार्य विमलसेन के शिष्य देवसेन ने श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में निमित्तशास्त्र के पारगामी आचार्य भद्रबाहु द्वारा उज्जयिनी में बारहवर्षीय दुष्काल की भविष्यवाणी का उल्लेख किया है,

जिसके परिणामस्वरूप अनेक गणनायकों ने अपने-अपने शिष्यों के साथ विभिन्न प्रदेशों में विहार किया। शान्ति नामक आचार्य सौराष्ट्र देश के वल्लभी नगर पहुँचे— जहाँ विक्रम की मृत्यु के १३६ वर्ष पश्चात् श्वेताम्बर संघ की उत्पत्ति हुई।^{११} इस प्रकार इस कथानक में भद्रबाहु के दक्षिण देश में बिहार का और चन्द्रगुप्त की दीक्षा का कोई उल्लेख नहीं है। पुनः इसमें जिन नैमित्तिक भद्रबाहु का उल्लेख है उनका सत्ता काल विक्रम की दूसरी शताब्दी मान लिया गया है जो भ्रान्त प्रतीत होता है। आचार्य हरिषेण के बृहत्कथाकोश में भद्रबाहु द्वारा बारह वर्षीय दुष्काल की भविष्यवाणी करने, उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त द्वारा दीक्षा ग्रहण कर भद्रबाहु से दस पूर्वों का अध्ययन करने तथा विशाखाचार्य के नाम से दक्षिणापथ के पुत्राट देश (कर्नाटक) जाने और रामिल्ल, स्थूलाचार्य और स्थूलिभद्र के सिन्धु-सौवीर देश जाने का निर्देश किया है, किन्तु उन्होंने आचार्य भद्रबाहु द्वारा उज्जयिनी के समीपवर्ती भाद्रपद देश (सम्भवतः वर्तमान मन्द्रसौर का समीपवर्ती प्रदेश) में अनशन करने का उल्लेख किया है।^{१२}

इस प्रकार न केवल श्वेताम्बर स्त्रोतों में अपितु हरिषेण के बृहत्कथाकोश,^{१३} श्रीचन्द्र के अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ कथाकोसु (वि. १२वीं शती) और देवसेन के भावसंग्रह में भी भद्रबाहु के दक्षिण देश जाने का कोई उल्लेख नहीं है। बृहत्कथाकोश आदि में उनके शिष्य विशाखाचार्य के दक्षिण देश में जाने का उल्लेख है,^{१४} किन्तु स्वयं उनका नहीं। उनके स्वयं दक्षिण देश में जाने के जो उल्लेख मिलते हैं वे रामचन्द्र मुमुक्षु के पुण्यास्रवकथाकोश^{१५} (१२वीं शती), रङ्गू के भद्रबाहुकथानक^{१६} (१५वीं शती) और रत्नन्दी के भद्रबाहुचरित्र^{१७} (१६वीं शती) के हैं। इनमें भी जहाँ पुण्यास्रवकथाकोश में उनके मगध से दक्षिण जाने का उल्लेख है, वही रत्नन्दी के भद्रबाहुचरित्र में अवन्तिका से दक्षिण जाने का उल्लेख है। इन विप्रतिपत्तियों को देखते हुए ऐसा लगता है कि ये कथानक १०वीं से १६वीं शती के मध्य रचित होने से पर्याप्त रूप से परवर्ती हैं और अनुश्रुतियों या लेखक की निजी कल्पना पर आधारित होने से काल्पनिक ही अधिक लगते हैं। यद्यपि डॉ० राजरामजी ने इसका समाधान करते हुए यह लिखा है कि 'यह बहुत सम्भव है कि आचार्य भद्रबाहु अपने विहार में मगध से दुष्काल प्रारम्भ होने के कुछ दिन पूर्व चले हों और उच्छकल्प (वर्तमान-उचेहरा, जो उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल भी है) होते हुए उज्जयिनी और फिर वहाँ से दक्षिण की ओर स्वयं गये हों या स्वयं वहाँ रुककर अपने साधु-सन्तों को दक्षिण की ओर जाने का आदेश दिया हो।'^{१८} किन्तु मेरी दृष्टि में जब मगध से पूर्वी समुद्रीतट से ताप्रलिप्ति होते हुए दक्षिण जाने का सीधा मार्ग था तो फिर दुष्कालयुक्त मध्य देश से उज्जयिनी होकर दक्षिण जाने का क्या औचित्य था?, यह समझ में नहीं आता।

मेरी दृष्टि में इन कथानकों में सम्भावित सत्य यही है कि चाहे दुष्काल की परिस्थिति में भद्रबाहु ने अपने मुनि संघ को दक्षिण में भेजा हो किन्तु वे स्वयं तो मगध में या

नेपाल की तराई में ही स्थित रहे। क्योंकि वहाँ उनकी ध्यान साधना के जो निर्देश हैं वे तित्थोगाली^{१९} (लगभग ५वीं शती) और चूर्णि साहित्य^{२०} (लगभग ७वीं शती) के होने से इन कथानकों की अपेक्षा न केवल प्राचीन हैं, अपितु प्रामाणिक भी लगते हैं। पुनः ध्यान साधना का यह उल्लेख बारह वर्षीय दुष्काल के पश्चात् पाटलिपुत्र की स्थूलिभद्र की वाचना के समय का है, अतः श्रुतकेवली भद्रबाहु के दक्षिण जाने के उल्लेख प्रामाणिक नहीं हैं। इसमें सत्यांश केवल इतना ही प्रतीत होता है कि भद्रबाहु तो अपनी वृद्धावस्था के कारण उत्तर भारत के मगध एवं तराई प्रदेश में स्थित रहे, किन्तु उन्होंने अपने शिष्य परिवार को अवश्य दक्षिण में भेजा था।

निर्ग्रन्थ मुनिसंघ की लंका एवं तमिल प्रदेश में ई.पू. में उपस्थिति के अभिलेखीय एवं बौद्ध साहित्य के संकेत भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।^{२१} पुनः वड्डमाणु (आन्ध्र प्रदेश) में हुई खुदाई में गोदासगण का अभिलेखीय साक्ष्य^{२२} भी इस तथ्य की पुष्टि अवश्य करता है कि भद्रबाहु की शिष्य परम्परा या तो ताप्रलिप्ति से जलमार्ग द्वारा या फिर बंगाल और उड़ीसा के स्थलमार्ग से आन्ध्रप्रदेश होकर लंका एवं तमिलनाडु पहुँची थी।

यहाँ इसी प्रसंग में श्रवणबेलगोला स्थित चन्द्रगिरि पर्वत एवं पार्श्वनाथ वसति के अभिलेखों की प्रामाणिकता की चर्चा करना भी अपेक्षित है। श्रवणबेलगोला के चन्द्रगिरि पर्वत पर शक संवत् ५७२ अर्थात् विक्रम संवत् ७०७ ईस्वी सन् ६५० का शिलालेख है^{२३} उसमें भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के उल्लेख हैं। जहाँ तक चन्द्रगिरि के अभिलेख का प्रश्न है, उसमें न तो भद्रबाहु को श्रुतकेवली कहा है और न चन्द्रगुप्त को मौर्यवंशीय। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है कि इसमें उल्लेखित भद्रबाहु को श्रुतकेवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त मौर्य माना जाये या भद्रबाहु को वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त नामक कोई गुप्तवंशीय राजा माना जाये।

पार्श्वनाथवसति के इससे भी ५० वर्ष पूर्व शक संवत् ५३३ या ई० सन् ६०० के एक अभिलेख में स्पष्ट रूप से श्रुतकेवली भद्रबाहु और नैमित्तिक भद्रबाहु ऐसे दो भद्रबाहु का उल्लेख है।^{२४} इसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु के पश्चात् विशाख आदि सात आचार्यों का उल्लेख करके फिर गुरु परम्परा के क्रम से भद्रबाहु स्वामी का उल्लेख है और उनके आदेश से सर्वसंघ का उज्जैन से दक्षिण पथ जाने का निर्देश है— इससे ऐसा प्रतीत होता है, ये भद्रबाहु वराहमिहिर के भाई नैमित्तिक भद्रबाहु होंगे। वराहमिहिर के पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति के आधार पर उनका काल शक संवत् ४३७। ई० सन् ५०५। विक्रम सं. ५६२ सिद्ध होता है^{२५} अतः ये अभिलेखीय उल्लेख नैमित्तिक भद्रबाहु से सम्बन्धित हो सकते हैं और इसमें उल्लेखित चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त

मौर्य न होकर चन्द्रगुप्त नामक कोई अन्य राजा होगा। अभिलेखों एवं नैमित्तिक भद्रबाहु की कालिक समानता भी इसका प्रमाण है।

ज्ञातव्य है कि रङ्धू ने अपने भद्रबाहुचरित्र में जिस चन्द्रगुप्त के भद्रबाहु से दीक्षित होने की बात कही है उसे चन्द्रगुप्त मौर्य न मानकर उसके पौत्र अशोक का पौत्र बताया है।^{२६} कुछ दिग्म्बर विद्वानों ने इसकी पहचान सम्प्रति से की है, किन्तु न तो सम्प्रति का नाम चन्द्रगुप्त था— ऐसा कोई प्रमाण मिलता है और न श्रुतकेवली भद्रबाहु से अशोक के पौत्र चन्द्रगुप्त की समकालिकता ही सिद्ध होती है। अतः इस कथानक में स्वैर कवि-कल्पना ही अधिक परिलक्षित होती है।

श्वेताम्बर प्रबन्धों में भी नैमित्तिक भद्रबाहु को प्रतिष्ठानपुर (पैठण—दक्षिण महाराष्ट्र) का निवासी माना गया है। अतः इनका सम्बन्ध दक्षिण में कर्नाटक की यात्रा से हो सकता है। पुनः श्रुतकेवली भद्रबाहु के सम्बन्ध में ये अभिलेख इसलिये भी प्रामाणिक नहीं लगते हैं कि ये उनके स्वर्गवास से एक हजार वर्ष बाद के हैं, अतः श्रुतकेवली भद्रबाहु के सम्बन्ध में इनकी प्रामाणिकता एक अनुश्रुति से अधिक नहीं मानी जा सकती है। हाँ, यदि ये नैमित्तिक भद्रबाहु से सम्बन्धित हैं तो इनकी प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता काफी बढ़ जाती है क्योंकि दोनों के काल में मात्र १५० वर्ष का अन्तर है। इस चर्चा से यह भी ज्ञात हो जाता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु और नैमित्तिक भद्रबाहु में लगभग ८०० वर्षों का लम्बा अन्तराल है।

श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थों में श्रुतकेवली भद्रबाहु के कार्यों में उनके द्वारा महाप्राण नामक ध्यान की साधना करने एवं स्थूलिभद्र को १४ पूर्वों की वाचना देने की सम्पूर्ण घटना का विवरण आवश्यकनिर्युक्ति (लगभग ३री शती) एवं तित्योगालीपइण्णा^{२७} (तीर्थोद्गालिक प्रकीर्णक—लगभग ५वीं शती) में मिलता है। संक्षेप में, द्वादशवर्षीय दुष्काल के बाद श्रमण संघ पाटलीपुत्र में एकत्रित हुआ। अंग साहित्य को व्यवस्थित करने हेतु आगमों की इस प्रथम वाचना का आयोजन हुआ— उसमें ग्यारह अंगों का पुनः संकलन किया गया किन्तु दृष्टिवाद एवं पूर्वों का संकलन नहीं हो सका, क्योंकि उस वाचना में इनको सम्पूर्ण रूप से जानने वाला कोई भी श्रमण उपस्थित नहीं था। उस समय दृष्टिवाद और १४ पूर्वों के सम्पूर्ण ज्ञाता मात्र भद्रबाहु ही थे जो नेपाल में महाप्राण ध्यान की साधना कर रहे थे। श्रमण संघ के प्रतिनिधि के रूप में कुछ मुनि पाटलीपुत्र (पटना) से नेपाल की तराई में गये और उनसे वाचना देने की प्रार्थना की, भद्रबाहु ने अपनी ध्यान साधना में विघ्न रूप मानकर वाचना देने से इन्कार कर दिया। वाचना देने से इन्कार करने पर संघ द्वारा बहिष्कृत करने/सम्भोग विच्छेद रूप दण्ड का निर्देश देने के कारण वे पुनः वाचना देने में सहमत होते हैं। स्थूलिभद्र के साथ कुछ मुनि वाचना लेने जाते हैं, प्रारम्भ में वाचना मंथर गति से चलती है। स्थूलिभद्र को छोड़कर शेष मुनि संघ निराश होकर लौट आता है। स्थूलिभद्र की दस पूर्वों की

वाचना की पूर्णता पर यक्षा आदि उनकी बहनों का आना—उनके द्वारा सिंह का रूप बनाना—उनके इस व्यवहार से खिन्न होकर भद्रबाहु का वाचना देने से इंकार करना, अत्यधिक विनय करने पर, शेष चार पूर्वों की शब्द रूप से वाचना देना— आदि कुछ घटनायें वर्णित हैं, जिनकी सूचना अनेक श्वेताम्बर स्रोतों में प्रायः समान रूप से प्राप्त होती है। किन्तु ये सभी स्रोत भी ईसा की तीसरी-चौथी सदी से पूर्व के नहीं हैं अर्थात् पाँच सौ वर्षों के पश्चात् लिपिबद्ध हुए हैं। फिर भी स्थूलिभद्र के सिंह रूप की विकुर्वणा के अतिरिक्त इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जिनकी प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सके। इस सम्पूर्ण विवरण से जो मुख्य बातें उभर कर सामने आती हैं, वे निम्न हैं— वाचना के समय भद्रबाहु अपनी वृद्धावस्था के कारण अपनी वैयक्तिक साधना को ही महत्वपूर्ण मानकर अनुपस्थित रहे। हो सकता है कि संघीय कार्यों के प्रति उनकी इस अन्यमनस्कता के कुछ अन्य भी कारण हों। स्थूलिभद्र भी उन्हें अपने व्यवहार से पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर सके, फलतः उन्हें दी जाने वाली वाचना भी मध्य में १० पूर्वों के बाद रोक दी गई।

ज्ञातव्य है कि दिगम्बर स्रोतों में इस आगम-वाचना का कोई निर्देश नहीं है। इसके स्थान पर दिगम्बर स्रोत आचार के प्रश्नों पर, विशेष रूप से वस्त्र-पात्र-कम्बल सम्बन्धी विवाद के आधार पर श्वेताम्बर और यापनीय परम्पराओं के उद्भव की बात करते हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध में दिगम्बर स्रोतों में जो विप्रतिपत्तियाँ हैं उसकी चर्चा तो मैं बाद में करूँगा किन्तु इतना दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के काल में श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय सम्प्रदायों के रूप में स्पष्ट संघ-भेद नहीं हुआ था— क्योंकि श्वेताम्बर (श्वेतपट्ट), दिगम्बर (निर्ग्रन्थ), यापनीय एवं कूर्चक आदि सम्प्रदायों के अस्तित्व सम्बन्धी जो भी साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं, वे सभी ईसा की चतुर्थ एवं पंचम शताब्दी से ही मिलते हैं। साहित्यिक स्रोतों में सर्वप्रथम विमलसूरि के 'पउमचरियं' में सियम्बर/सियम्बरा शब्द मिलता है।^{१८} इसमें सीता को दीक्षित अवस्था में सियम्बरा और एक अन्य प्रसंग में एक मुनि को सियम्बर कहा गया है। यह मात्र एक विशेषण है या सम्प्रदाय भेद का सूचक है, यह निर्णय कर पाना कठिन है। सम्प्रदाय भेद के रूप में इन शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग हल्सी (धारवाड़-उत्तरी कर्णाटक) के अभिलेख में मिलता है,^{१९} जो ईसा की पाँचवी शती का है। इस अभिलेख में निर्ग्रन्थ, श्वेतपट्ट, यापनीय, कूर्चक ऐसे चार जैन सम्प्रदायों का उल्लेख है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि स्पष्ट संघ भेद ईसा की पाँचवी शती की घटना है जिसका सम्बन्ध चाहे किसी रूप में नैमित्तिक भद्रबाहु से तो हो सकता है किन्तु श्रुतकेवली भद्रबाहु से कदापि नहीं है। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि दिगम्बर स्रोतों में जो वस्त्र-पात्र विवाद की सूचना है, वह पूर्णतः निःस्सार है। दिगम्बर परम्परा के भद्रबाहु सम्बन्धी कथानकों में संघ भेद सम्बन्धी जो घटनाक्रम वर्णित हैं उसमें कितना सत्यांश है, यह समझने के लिये पहले इनकी समीक्षा कर लेनी होगी।

दिगम्बरों के मान्य साहित्य में यतिवृषभ की तिलोयपण्णति (५-६ शती) में भद्रबाहु का निर्देश तो है,^{३०} किन्तु उसमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, जो यह बताता हो कि श्वेताम्बर एवं यापनीय परम्पराओं की उत्पत्ति कैसे हुई? सर्वप्रथम हरिषेण के बृहत्कथाकोश (दसवी शती) में एवं विमलसेन के शिष्य देवसेन के भावसंग्रह (लगभग दसवी शती) में श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति की कथा को भद्रबाहु के कथानक के साथ जोड़ दिया गया है,^{३१} किन्तु इसमें काल सम्बन्धी विसंगति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। एक ओर इसमें भद्रबाहु के शिष्य शान्त्याचार्य के द्वादशवर्षीय दुष्काल में वल्लभी जाने और वहाँ जाकर कम्बल, पात्र, दण्ड एवं श्वेत वस्त्र ग्रहण करने का निर्देश है। साथ ही इस कथा में यह भी कहा गया है कि सुकाल होने पर शान्त्याचार्य द्वारा वस्त्रादि के त्याग का निर्देश देने पर उनके शिष्य (जिनचन्द्र) ने उनको मार डाला। उसके बाद वह शान्त्याचार्य व्यंत्तर योनि में उत्पन्न होकर शिष्यों को पीड़ा देने लगा। शिष्यों द्वारा उनकी प्रतिदिन पूजा (शान्ति स्नात्र) करने और काष्ठपट्टिका पर अंकित उनके चरण सदा साथ रखने का वचन देने पर वह व्यन्तर शान्त हुआ और इस प्रकार श्वेताम्बरों का कुलदेव बन गया। इसमें इस घटना का समय विक्रम की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद अर्थात् वीर निर्वाण संवत् ६०६ बताया है। जबकि श्रुतकेवली भद्रबाहु का स्वर्गवास तो वीर निर्वाण संवत् १६२ में हो गया था। इस प्रकार यह कथानक न तो श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय से संगति रखता है और न नैमित्तिक भद्रबाहु के समय से क्योंकि श्रुतकेवली भद्रबाहु तो उसके ४६० वर्ष पूर्व ही स्वर्गस्थ हो चुके थे और नैमित्तिक भद्रबाहु इस घटना के लगभग ४०० वर्ष बाद हुए हैं अतः यह कथानक पूरी तरह काल्पनिक है। इसमें सत्यांश मात्र यह है कि वस्त्र-पात्र सम्बन्धी यह विवाद आर्यभद्रगुप्त के गुरु शिवभूति और आर्यकृष्ण के बीच वीर निर्वाण संवत् ६०६ या ६०९ में ही हुआ था क्योंकि इसकी पुष्टि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही साहित्यिक स्रोतों से हो जाती है। इन शिवभूति के एक शिष्य पूर्वधर भद्रगुप्त थे अतः नाम साम्य का सहारा लेकर इसे भद्रबाहु के साथ जोड़ दिया गया। पुनः इसमें भद्रबाहु के नाम के साथ श्रुतकेवली का अभाव और उनके अवन्तिका में होने का उल्लेख भी अचेलता के पक्षधर शिवभूति के शिष्य भद्रगुप्त से ही संगति रखते हैं।

ज्ञातव्य है कि इन भद्रगुप्त से आर्यरक्षित ने न केवल पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया था अपितु उनका समाधिभरण/निर्यापना भी करवाई थी। यह निर्यापना भी अवन्ती के समीपवर्ती भाद्रपद देश में हुई थी। आर्यरक्षित भी स्वयं दशार्णपुर (वर्तमान मन्दसौर) के निवासी थे। इस प्रकार यहाँ पूर्वधर आर्य भद्रगुप्त के कथानक को श्रुतकेवली भद्रबाहु से जोड़ने का असफल प्रयास हुआ है। यह भी ज्ञातव्य है कि आर्य भद्रगुप्त और आर्यरक्षित के समय तक जिनकल्प का प्रचलन था। यद्यपि अचेलकता के समर्थक जिनकल्प के साथ-साथ पात्र, कम्बल आदि के ग्रहण के रूप में स्थविर कल्प भी प्रचलित

था। आर्यरक्षित ने एक ओर वर्षाकाल में अतिरिक्त पात्र की अनुमति दी थी, वहीं दूसरी ओर अपने पिता को नग्नता ग्रहण करवाने हेतु कुशलतापूर्वक एक युक्ति भी रची थी।^{३२} इसी काल की मथुरा की जिनमूर्तियों के पादपीठ पर जो मुनियों के अंकन हैं वे भी इसे पुष्ट करते हैं। क्योंकि उनमें नग्न मुनि के अंकन के साथ कम्बल, मुखवस्त्रिका एवं झोली सहित पात्र प्रदर्शित है। (इन अंकनों के चित्र **जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय** नामक ग्रन्थ के अन्त में प्रदर्शित हैं और ये मूर्तियाँ और पादपीठ लखनऊ संग्रहालय में उपलब्ध हैं)।

इसके पश्चात् दिगम्बर परम्परा में हरिषेण के बृहत्कथाकोश में श्रुतकेवली भद्रबाहु के कथानक के साथ अर्ध स्फालक एवं श्वेताम्बर परम्परा की उत्पत्ति के कथानक उपलब्ध होते हैं। अन्तर यह है कि जहाँ देवसेन ने इस घटना को वीर निर्वाण सं० ६०६ में घटित बताया, वहाँ हरिषेण ने स्पष्टतः इसे श्रुतकेवली भद्रबाहु से जोड़कर ई०पू० तीसरी शती में बताया। मात्र यही नहीं, उन्होंने इसमें देवसेन द्वारा उल्लेखित शान्त्याचार्य के स्थान पर रामिल्ल, स्थूलवृद्ध (स्थूलाचार्य) और स्थूलिभद्र ऐसे तीन अन्य आचार्यों के नाम दिये हैं।^{३३} इनमें स्थूलिभद्र के नाम की पुष्टि तो श्वेताम्बर स्रोतों से होती है किन्तु रामिल्ल और स्थूलवृद्ध कौन थे उसकी पुष्टि अन्य किसी भी स्रोत से नहीं होती है। इसमें स्थूलिभद्र को भी एक स्थान पर छोड़कर अन्यत्र भद्राचार्य कहा गया है। एक विशेष बात इस कथानक में यह है कि इसमें अर्धस्फालकों से श्वेताम्बरों की उत्पत्ति बताई है। इसे कम्बल तीर्थ भी कहा गया है और कथानक के अन्त में कम्बलतीर्थ से सावलीपत्तन में यापनीय संघ की उत्पत्ति दिखाई है। जबकि ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य यह है कि भद्रबाहु के काल में जो मुनिसंघ दक्षिण में चला गया उसे वहाँ के जलवायु के कारण नग्न रहने में विशेष कठिनाई नहीं हुई किन्तु जो मुनिसंघ उत्तर में रहा उसे उत्तर-पश्चिम में जलवायु की प्रतिकूलता के कारण नग्न रहते हुए भी कम्बल एवं पात्रादि स्वीकार करना पड़े तथा इसी कारण जिनकल्प एवं स्थविरकल्प का विकास हुआ। इसे उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग भी कह सकते हैं।

शिवभूति और आर्यकृष्ण के विवाद के पश्चात् ईसा की दूसरी शती में दो वर्ग बने। एक वर्ग ने पूर्व में गृहीत कम्बल और पात्र को यथावत रखा— इससे ही कालान्तर में वर्तमान श्वेताम्बर संघ का विकास हुआ और दूसरा वर्ग जिसने कम्बल और पात्र का त्याग करके उत्तर भारत में पुनः अचेलकत्व और पाणीपात्र की प्रतिष्ठा की थी और जिसे श्वेताम्बरों ने बोटिक कहा था। वही आगे चलकर दक्षिण में पहले मूलगण या मूलसंघ के नाम से और फिर यापनीय संघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्ञातव्य है कि इस सम्बन्ध में विस्तृत सप्रमाण चर्चा मैंने **जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय** नामक अपने ग्रन्थ में की है। इच्छुक व्यक्ति उसे वहाँ देख सकते हैं।^{३४}

ज्ञातव्य है कि रङ्धू ने अपने भद्रबाहुचरित्र में कम्बल धारक अर्ध नग्न मुनियों से श्वेताम्बर परम्परा का उद्भव दिखाया, वह तो ठीक है किन्तु उन्होंने श्वेताम्बरों से यापनीयों की उत्पत्ति दिखाई, वह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि श्वेताम्बर और यापनीय दोनों का विकास उत्तर भारत की स्थविरकल्पी मुनियों की परम्परा से हुआ है, जो नग्न रहते हुए भी कम्बल, पात्र एवं मुखवस्त्रिका रखते थे।

लगभग १५वीं शती में रङ्धू ने और सोलहवीं शती में रत्नन्दी ने जो भद्रबाहु चरित्र रचे उनमें पूर्व की अनुश्रुतियों में स्वैर कल्पना से भी नई-नई बातें जोड़ दी हैं। जैसे— मुनियों द्वारा रात्रि में भिक्षा लाकर दिन में खाना, भिखारियों द्वारा मुनि का पेट चीरकर उसमें से अन्न निकालकर खा जाना, रात्रि में भिक्षार्थ आये नग्न मुनि को देखकर स्त्री का गर्भपात हो जाना, स्थूलवृद्ध के शिष्यों द्वारा उनकी हत्या करना, उनका व्यन्तर के रूप में जन्म होना और अपने उन दुष्ट शिष्यों को कष्ट देना, शिष्यों द्वारा उनकी हड्डी या काष्ठ पट्टिका पर अंकित चरण की पूजा करना आदि।^{३५} ज्ञातव्य है कि भावसेन ने श्वेताम्बरों में प्रचलित शान्ति पाठ और शान्ति-स्नात्र को देखकर शान्त्याचार्य की कथा गढ़ी, तो रङ्धू एवं रत्नन्दी ने श्वेताम्बरों में स्थापनाचार्य की परम्परा को देखकर स्थूलाचार्य की यह कथा गढ़ी है। ज्ञातव्य है कि स्थापनाचार्य के रूप पाँच कोडिया या काष्ठ पट्टिका रखने की परम्परा श्वेताम्बरों में है। स्थापनाचार्य का उल्लेख तो भगवतीआराधना में भी मिलता है।

भद्रबाहु के जीवनवृत्त में विप्रतिपत्तियाँ

इन कथानकों की स्वैर कल्पनाओं के जोड़ने से न केवल ऐतिहासिक प्रामाणिकता खण्डित हुई अपितु इनकी पारस्परिक विसंगतियाँ भी बढ़ती गईं। इस सम्बन्ध में मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर आचार्य हस्तीमल^{३६} जी एवं डॉ० राजाराम^{३७} जी के मन्तव्यों के आधार पर कुछ विसंगतियों को प्रस्तुत कर रहा हूँ—

- (१) द्वादशवर्षीय दुष्काल कहाँ पड़ा इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। हरिषेण, देवसेन, एवं रत्नन्दी ने उज्जयिनी में बताया तो रङ्धू ने उसे मगध में कहा और भावसेन ने उसे सिन्धु-सौवीर देश में बताया।
- (२) भद्रबाहु दक्षिणापथ गये अथवा नहीं इस सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है। हरिषेण, देवसेन आदि ने उन्हें अवन्ती प्रदेश में रहने का उल्लेख किया तो रङ्धू ने उन्हें पाटलिपुत्र से दक्षिण जाने का संकेत किया।
- (३) हरिषेण ने चन्द्रगुप्त मुनि को ही विशाखाचार्य बताया है जबकि देवसेन और रत्नन्दी ने चन्द्रगुप्त मुनि और विशाखाचार्य को अलग-अलग माना है।
- (४) श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति के प्रसंग में जहाँ देवसेन ने शान्त्याचार्य के शिष्य

जिनचन्द्र का उल्लेख किया वहाँ अन्य सभी ने स्थूलवृद्ध के शिष्यों का उल्लेख किया।

- (५) जहाँ देवसेन ने श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति विक्रम संवत् १३६ अर्थात् वीर निर्वाण सं० ६०६ में मानी वहाँ अन्यो ने उसे श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ जोड़कर उसे वीर निर्वाण संवत् १६२ के पूर्व माना।
- (६) भावसेन ने चन्द्रगुप्त के मुनि होने का कोई उल्लेख नहीं किया, जबकि अन्यो ने उनके मुनि होने का उल्लेख किया है। किन्तु रङ्गधू ने इसे चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) के स्थान पर उसके पौत्र अशोक का भी पौत्र निरूपित किया है जबकि कालिक दृष्टि से श्रुतकेवली भद्रबाहु और इस अशोक के पौत्र चन्द्रगुप्त में कोई संगति नहीं है। पुनः अशोक के पौत्र का नाम चन्द्रगुप्त था इसकी ऐतिहासिक आधार पर कोई पुष्टि नहीं होती है।
- (७) इसी प्रकार श्वेताम्बरों के उत्पत्ति से सम्बन्धित घटनाक्रम में प्रत्येक लेखक ने अपनी स्वैर कल्पना का प्रयोग किया है अतः उनमें भी अनेक विप्रतिपत्तियाँ दिखाई देती हैं, जिनके संकेत पूर्व में किये गये हैं।
- (८) भद्रबाहु के स्वर्गवास स्थल के सम्बन्ध में भी इन कथानकों में मतभेद है। किसी ने उसे भाद्रपद देश माना तो किसी ने दक्षिणापथ की गुहाटवी माना है। आश्चर्य है कि १६वीं शती में हुए रत्ननदी तक किसी ने भी उसे श्रवणबेलगोला नहीं बताया है।

इस प्रकार की अनेक विप्रतिपत्तियों के कारण दिगम्बर परम्परा में प्रचलित भद्रबाहु सम्बन्धी इन कथानकों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। अतः उनमें निहित तथ्यों की ऐतिहासिक दृष्टि से गहन समीक्षा अपेक्षित है।

दिगम्बर परम्परा में वर्णित भद्रबाहुचरित्र सम्बन्धी कथानकों में उत्तरभारत के द्वादशवर्षीय दुष्काल, उनके शिष्य विशाखाचार्य के दक्षिण गमन, जिनकल्प और स्थविरकल्प के विभाजन तथा श्वेताम्बर एवं यापनीय सम्प्रदायों के उद्भव के कथानक ही विस्तार से वर्णित हैं। मेरी दृष्टि में इन सबमें सत्यांश इतना ही है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय मगध में दुष्काल अथवा राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति रही है। फलतः उनकी शिष्य परम्परा ने दक्षिण में प्रवास किया हो— यह भी सत्य है कि हलसी (धारवाड़) के पाँचवीं शती के अभिलेखों में श्वेतपट्ट, यापनीय, कूर्चक एवं निर्ग्रन्थ सम्प्रदायों के जो उल्लेख हैं उनमें निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय सम्भवतः श्रुतकेवली भद्रबाहु की शिष्य परम्परा से सम्बन्धित रहा है।^{३८} जबकि यापनीय सम्प्रदाय जो क्रमशः भद्रान्वय (तीसरी शती) एवं मूलसंघ (चतुर्थ शती) के नामों से अभिहित होता हुआ हलसी (पाँचवीं शती) में यापनीय सम्प्रदाय के नाम से ही अभिहित हुआ^{३९}— उसका सम्बन्ध भी भद्र

नामक आचार्य से रहा है। फिर वे चाहे शिवभूति के शिष्य और आर्य नक्षत्र के गुरु आर्यभद्रगुप्त (ई० दूसरी शती का पूर्वार्ध) हों अथवा उनकी शिष्य परम्परा में हुए गौतम गोत्रीय आर्यभद्र (ई० तीसरी का पूर्वार्ध), जिनके नाम से भद्रान्वय चला और जो निर्युक्तियों के कर्ता हैं तथा जो आर्य विष्णु के प्रशिष्य आर्य कालक के शिष्य तथा स्थविर वृद्ध के गुरु और स्कन्दिल एवं सिद्धसेन दिवाकर के प्रगुरु रहे हैं ये सभी यापनीय एवं श्वेताम्बर दोनों के पूर्वज रहे हैं— यही कारण है कि ये दक्षिण भारत में विकसित अचेलकत्व की समर्थक दिगम्बर और यापनीय परम्परा में भी मान्य रहे हैं। मेरी दृष्टि में दिगम्बर परम्परा की पट्टावली में उल्लेखित आर्य नक्षत्र और आर्य विष्णु भी वे ही हैं जिनका उल्लेख कल्पसूत्र एवं नन्दीसूत्र की स्थविरावली में मिलता है।^{५०}

इसी प्रकार दिगम्बर परम्परा के भद्रबाहु कथानकों में उल्लेखित स्थूलभद्र, रामिल्ल और स्थूलवृद्ध (स्थूलाचार्य) किसी एक भद्रबाहु से सम्बन्धित न होकर पृथक्-पृथक् भद्र नामक आचार्यों से हैं। स्थूलभद्र का सम्बन्ध श्रुतकेवली भद्रबाहु से रहा है— सम्भवतः इनके द्वारा जिनकल्प के स्थान पर स्थविर कल्प का विकास हुआ हो। हो सकता है कि रामिल्ल का सम्बन्ध भद्रान्वय के संस्थापक आर्य भद्रगुप्त से हो और ये रामिल्लाचार्य विदिशा में स्थापित जिनमूर्तियों में उल्लेखित रामगुप्त हों इनसे ही आगे चलकर भद्रान्वय और यापनीय सम्प्रदाय का विकास हुआ है। जबकि स्थूलवृद्ध वस्तुतः स्थविर वृद्ध हों जिनके शिष्यों से वर्तमान श्वेताम्बर परम्परा का विकास हुआ। ज्ञातव्य है कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार गौतमगोत्रीय आर्यभद्र स्थविरवृद्ध के गुरु हैं। इस प्रकार ये तीनों भद्र नामक तीन अलग-अलग आचार्यों से सम्बद्ध रहे, जिन्हें श्रुतकेवली आर्य भद्रबाहु की कथा के साथ गड़-मड़ कर दिया गया है।

मुझे ऐसा लगता है कि परवर्ती दिगम्बर आचार्यों ने जो भद्रबाहु कथानक तैयार किये उनमें अनुश्रुतियों से प्राप्त इन भद्र नामक विभिन्न आचार्यों के कथानकों को आपस में मिला दिया और श्वेताम्बर को अति निम्न स्तरीय या भ्रष्ट दिखाने के लिये घटनाक्रमों की स्वैर कल्पना से रचना कर दी। यदि उस युग के श्वेताम्बर मुनि इतने निम्न एवं भ्रष्ट आचरण वाले होते तो हलसी के उस अभिलेख में (जिसमें निर्ग्रन्थों एवं श्वेताम्बरों का साथ-साथ उल्लेख हुआ है) श्वेताम्बरों के लिये— अर्हत्प्रोक्त सद्धर्मकरणपरस्ता श्वेतपट्टमहाश्रमण संघ जैसी आदरसूचक शब्दावली का प्रयोग नहीं होता।^{५१} ज्ञातव्य है कि यह अभिलेख दक्षिण भारत के उत्तरी कर्नाटक के उस क्षेत्र का है जहाँ निर्ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदाय एवं यापनीय सम्प्रदाय अधिक प्रभावशाली था। वहाँ राजा के द्वारा ई० सन् की पाँचवी शती में श्वेताम्बरों के लिये महातपस्वी जैसे शब्दों के प्रयोग से यह सिद्ध हो जाता है कि उस युग के श्वेताम्बर मुनि इतने आचारहीन नहीं थे जैसा कि इन भद्रबाहु चरित्रों में उन्हें चित्रित किया गया है।

आचार्य हस्तीमलजी ने जैन धर्म के मौलिक इतिहास, भाग २, पृष्ठ ३५७ पर इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि परवर्तीकाल में रचित दिगम्बर परम्परा के इन भद्रबाहु चरित्रों में किस प्रकार स्वैर कल्पनाओं द्वारा दूसरे सम्प्रदायों को नीचा दिखाने के लिये घटनाक्रम जोड़े जाते रहे। उनके अनुसार दिगम्बर परम्परा के विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि विभिन्न कालों में भद्रबाहु नाम के पाँच आचार्य हुए हैं। उन्होंने कालक्रम के अनुसार इनका विवरण इस प्रकार दिया है।

१. श्रुतकेवली भद्रबाहु (वीर निर्वाण सं० १६२ अर्थात् ई०पू० तीसरी शती)।
२. २९वें पट्टधर भद्रबाहु (वीर निर्वाण सं० ४९२-५१५ अर्थात् ईसा की प्रथम शती)।
३. नन्दिसंघ बलात्कारगण की षट्पावली में उल्लेखित भद्रबाहु (वीर निर्वाण सं० ६०९-६३१ अर्थात् ईसा की दूसरी शती)।
४. निमित्तज्ञ भद्रबाहु (ईसा की तीसरी शती, वीर निर्वाण आठवीं-नौवीं शती)।
५. प्रथम अंगधारी भद्रबाहु (वीर निर्वाण संवत् १००० के पश्चात्)।

यहाँ इन पाँच भद्रबाहु नामक आचार्यों की संगति श्वेताम्बर परम्परा से कैसे सम्भव है— यह विचार करना अपेक्षित है—

- (१) अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु जिनका स्वर्गवास वीर निर्वाण सं० १६२ में हुआ ये १४ पूर्व व १२ अंगों के ज्ञाता थे। श्वेताम्बर परम्परानुसार ये सातवें और दिगम्बर परम्परानुसार ये आठवें पट्टधर थे। ये सचेत-अचेत दोनों परम्परा को मान्य रहे हैं। इनके समय में उत्सर्ग और अपवाद मार्ग या स्थविरकल्प और जिनकल्प की व्यवस्थायें पृथक्-पृथक् हुईं। ये छेद सूत्रों के कर्ता हैं। छेद सूत्रों में उत्सर्ग और अपवाद मार्गों तथा जिनकल्प और स्थविरकल्प की चर्चा है। इससे फलित होता है कि उनके काल में वस्त्र-पात्र व्यवस्था का प्रचलन था। पुनः यदि भद्रबाहु (प्रथम) को उत्तराध्ययन का संकलनकर्ता माना जाये तो उसमें भी छेदसूत्रों के तथा सचेत-अचेत परम्पराओं के उल्लेख हैं। पुनः विद्वानों ने पूर्वोक्त को पार्श्वपत्य परम्परा से सम्बद्ध माना है। चूंकि छेदसूत्रों का आधार पूर्व थे और पूर्व पार्श्वपत्य परम्परा के आचार्य मार्ग का प्रतिपादन करते थे, अतः छेदसूत्रों में वस्त्र-पात्र के उल्लेख पार्श्वपत्यों से सम्बन्धित थे, जो आगे चलकर महावीर की परम्परा में मान्य हो गये। इनका काल ई०पू० तीसरी शती है।
- (२) २९वें पट्टधर आचार्य भद्रबाहु (अपरनाम—यशोबाहु) जो आठ अंगों के ज्ञाता थे, इनका काल वीर निर्वाण सं० ४९२ से ५१५ (ई०पू० प्रथम शती) माना गया है। आचार्य हस्तिमलजी के इस उल्लेख का आधार सम्भवतः कोई दिगम्बर षट्पावली होगी। हरिवंशपुराण में यशोबाहु को महावीर का २७वाँ पट्टधर बताया गया है। इस काल में कोई भद्रबाहु या यशोबाहु नामक आचार्य हुए हैं, इसकी पुष्टि श्वेताम्बर स्त्रोतों से नहीं होती है।

- (३) नन्दिसंघ बलात्कार गण की पट्टावली में उल्लेखित वीर निर्वाण सं० ६०९ से ६३१ के मध्य आचार्य पद पर रहे हुए आचार्य भद्रबाहु के शिष्य गुप्तिगुप्त थे। आचार्य हस्तिमलजी के अनुसार इन्हीं भद्रबाहु के कथानक को थोड़ा अतिरंजित करके ही श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ जोड़ दिया गया है। मेरी दृष्टि में वस्तुतः ये शिवभूति के शिष्य भद्रगुप्त थे। इनके काल में वीर निर्वाण संवत् ६०६ या ६०९ में उत्तर भारत के निर्ग्रन्थ संघ में पुनः अचेलकत्व की प्रतिष्ठा हुई एवं बोटिक या यापनीय परम्परा का विकास भी इसी काल में हुआ। नन्दीसूत्र एवं कल्पसूत्र की स्थविरावली में इनका उल्लेख शिवभूति के शिष्य के रूप में है। श्वेताम्बर पट्टावलियों में इनके शिष्य श्रीगुप्त का उल्लेख है। सम्भव है कि श्रीगुप्त ही गुप्तिगुप्त हों।
- (४) निमित्तज्ञ भद्रबाहु दिगम्बर परम्परा के अनुसार ग्यारह अंग के विच्छेद के पश्चात् हुए हैं। श्रुतस्कन्ध के कर्ता के अनुसार इनका काल विक्रम की तीसरी शताब्दी माना गया है। मेरी दृष्टि में ये गौतमगोत्रीय आर्यभद्र हैं, जो निर्युक्ति के कर्ता तथा आर्य विष्णु के प्रशिष्य और आर्य कालक के शिष्य हैं तथा स्थविर वृद्ध के गुरु और सिद्धसेन दिवाकर के दादा गुरु हैं। यही काल स्कन्दिल की माथुरी एवं वल्लभी की नागार्जुन की वाचना का है क्योंकि आगमों की माथुरी वाचना एवं निर्युक्तियों यापनीयों को मान्य रही हैं।
- (५) वीर निर्वाण के १००० वर्ष पश्चात् हुए भद्रबाहु दिगम्बर परम्परा के अनुसार प्रथम अंग के धारक थे। मेरी दृष्टि में ये श्वेताम्बर प्रबन्धों में उल्लेखित वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु हैं। वराहमिहिर की पंच सिद्धान्तिका में उसका रचनाकाल शक सं० ४२७ बताया है, इसमें १३५ वर्ष जोड़ने पर विक्रम सं० ५६२ आता है। इसमें ४७० जोड़ने पर वीर निर्वाण सं० १०३२ आता है। यही कारण है कि इनका उल्लेख कल्पसूत्र स्थविरावली में नहीं है। यदि हेमचन्द्र की मान्यता के आधार पर इसमें ६० वर्ष कम भी करें तो भी इनका काल वीर निर्वाण सं० ९७२ आता है जो इस वाचना के मात्र ८ वर्ष पूर्व है, अतः कल्पसूत्र स्थविरावली में इनका उल्लेख होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इनके समय में श्वेताम्बर सम्प्रदाय एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में अस्तित्व में आ गया था और श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीयों के बीच भेद रेखा स्पष्ट हो चुकी थी।

इस प्रकार आचार्य हस्तिमलजी द्वारा उल्लेखित दिगम्बर परम्परा में विभिन्न कालों में हुए पाँच भद्रबाहु में से चार का उल्लेख श्वेताम्बर स्रोतों में प्राच्यगोत्रीय भद्रबाहु, भद्रगुप्त, गौतम गोत्रीय आर्यभद्र और नैमित्तिक वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु नाम से प्राप्त होता है। इन चारों की दिगम्बर स्रोतों से प्राप्त नामों से कालिक समरूपता भी है।

ज्ञातव्य है श्वेताम्बर परम्परा में तित्थोगाली पड़ण्णा एवं चूर्णिकाल तक भद्रबाहु के जीवनवृत्त में उनका पूर्वधर होना, द्वादशवर्षीय दुष्काल के पश्चात् पाटलिपुत्र में हुई प्रथम आगम वाचना, उसमें भद्रबाहु की अनुपस्थिति, संघ द्वारा पूर्वी की वाचना देने का अनुरोध, वृद्धावस्था एवं महाप्राण ध्यान साधना में व्यस्तता के कारण भद्रबाहु द्वारा अपनी असमर्थता या अन्यमनस्कता व्यक्त करना, संघ द्वारा सम्भोग विच्छेद की स्थिति देखकर संघ का अनुरोध स्वीकार कर स्थूलभद्र आदि को वाचना देना, स्थूलभद्र द्वारा सिंह रूप बनाकर विद्या का प्रदर्शन करना, भद्रबाहु द्वारा आगे वाचना देने से इंकार, विशेष अनुरोध पर मात्र मूल की वाचना देना आदि घटनायें वर्णित हैं। वहीं नन्दराज द्वारा मंत्री शकडाल के साथ दुर्व्यवहार, स्थूलभद्र से वैराग्य प्राप्त कर दीक्षित होना आदि घटनायें उल्लेखित हैं।^{४१} किन्तु इनमें कहीं भी वराहमिहिर का उल्लेख नहीं है। 'गच्छाचार पडना' की दोषट्टीवृत्ति से लेकर प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोश आदि के भद्रबाहुचरित्र में मात्र वराहमिहिर सम्बन्धी कथानक ही वर्णित है। किन्तु ज्ञातव्य है कि ये सभी रचनायें ईसा की ११वीं शती के बाद की हैं। इनमें भद्रबाहु के साथ वराहमिहिर का दीक्षित होना, फिर श्रमण पर्याय का त्याग करके अपने द्वारा १२ वर्ष तक सूर्य विमान में रहकर ज्योतिष चक्र की जानकारी प्राप्त करने का मिथ्या प्रवाद फैलाना, राजपुरोहित बन जाना, वराहमिहिर को पुत्र की प्राप्ति होना, उस पुत्र के दीर्घजीवी होने की भविष्य करना, इसी समय उस पुत्र के बारे में भद्रबाहु द्वारा बिल्ली के योग से उसकी सात दिन में मृत्यु होने की भविष्यवाणी करने और भद्रबाहु की भविष्यवाणी सत्यसिद्ध होने के उल्लेख हैं। इन प्रबन्धों में द्वारा इन्हें चतुर्दश पूर्वधर और निर्युक्ति का कर्ता भी कहा गया है। इस प्रकार श्वेताम्बर एवं दिगम्बर स्रोतों में श्रुतकेवली भद्रबाहु और नैमित्तिक भद्रबाहु के कथानकों को मिला दिया गया है। मात्र यही नहीं, इन दोनों के मध्य में हुए आर्यभद्रगुप्त और गौतमगोत्रिय आर्यभद्र नामक आचार्यों के कथानक एवं कृतित्व भी इनमें घुल मिल गये हैं जिनकी सम्यग् समीक्षा करके उनका विश्लेषण करना अपेक्षित है।

आचार्य भद्रबाहु का कृतित्व

जहाँ तक श्रुतकेवली भद्रबाहु की कृतियों का प्रश्न है उनको दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प (बृहत्कल्प) और व्यवहार नामक छेदसूत्रों का कर्ता माना गया है।^{४२} दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति और अन्य स्रोतों से इसकी पुष्टि होती है। कुछ लोगों ने इन्हें निशीथ का कर्ता भी माना है।^{४३} इस सम्बन्ध में मेरा चिन्तन यह है कि न केवल निशीथ अपितु सम्पूर्ण आचारचूला—जिसका एक भाग निशीथ रहा है उसके कर्ता भी श्रुतकेवली भद्रबाहु हैं। क्योंकि उस काल तक निशीथ आचार चूला का ही एक भाग था और उससे उसका पृथक्करण नहीं हुआ था।

इसके अतिरिक्त भद्रबाहु के कृतित्व के सम्बन्ध में जो नई बात मुझे ज्ञात हुई वह यह है कि उत्तराध्ययनसूत्र के संकलनकर्ता भी श्रुतकेवली भद्रबाहु हैं। उत्तराध्ययन के अध्ययन अंग आगमों एवं पूर्वों से उद्धृत हैं।^{५५} इस प्रकार उत्तराध्ययन एक कर्तृक नहीं होकर एक संग्रह ग्रन्थ ही सिद्ध होता है अतः इसका कर्ता कौन है, यह प्रश्न निरर्थक है। फिर भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि इसका संग्रह या संकलन किसने किया? प्राचीनकाल में संग्राहक या संकलनकर्ता कहीं भी अपना नाम निर्देश नहीं करते थे। अतः इस सम्बन्ध में एक सम्भावना यह व्यक्त की जा सकती है कि उत्तराध्ययन के अध्ययन पूर्वों से उद्धृत हैं अतः उसके संकलनकर्ता कोई पूर्वधर आचार्य रहे होंगे। पूर्वधरों में भद्रबाहु का नाम महत्वपूर्ण है अतः भद्रबाहु उत्तराध्ययन के संकलनकर्ता हैं यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में एक प्रमाण आचार्य आत्माराम जी ने अपनी उत्तराध्ययन की भूमिका में दिया है। वे लिखते हैं कि 'भद्रबाहुना प्रोक्तानि भद्रबाहुनि उत्तराध्ययनानि' अर्थात् भद्रबाहु द्वारा प्रोक्त होने से उत्तराध्ययनों को भद्रबाहुव भी कहा जाता है। इस आधार पर कई विद्वानों ने उत्तराध्ययन के संकलनकर्ता के रूप में भद्रबाहु को मानने की सम्भावना व्यक्त की है। आत्मारामजी म० सा० ने भी उत्तराध्ययन की भूमिका में यह निर्देश तो किया है कि उत्तराध्ययन का एक नाम 'भद्रबाहुव' भी है किन्तु उत्तराध्ययन का यह नाम कहां उपलब्ध होता है इसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। किन्तु उनके अनुसार उपरोक्त पंक्ति के आधार पर भद्रबाहु को उत्तराध्ययन का रचयिता मानने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त कथन में भद्रबाहुना के साथ प्रोक्तानि क्रियापद प्रयुक्त हुआ है जिसकी व्युत्पत्ति 'प्रकर्षेण उक्तानि प्रोक्तानि' है अर्थात् विशेष रूप से व्याख्यात, विवेचित या अध्यापित है। प्रोक्तानि का अर्थ रचितानि नहीं हो सकता है। इस बात की पुष्टि शाकटायन व्याकरण के प्रोक्ते (३/१/६९), हेम व्याकरण के 'तेन प्रोक्ते' (६/३/१८) तथा पाणिनीय व्याकरण के तेन प्रोक्तं (४/३/१०) सूत्रों की व्याख्या से भी होती है।^{५६}

पुनः भाषा, शैली एवं विषयवस्तु की दृष्टि से विचार करने पर भी उत्तराध्ययन के सभी अध्ययनों को एक काल की रचना नहीं माना जा सकता है। इसमें एक ओर प्राचीन अर्धमागधी प्राकृत के शब्दों का प्रयोग मिलता है तो दूसरी ओर अर्वाचीन महाराष्ट्री प्राकृत के शब्द भी उपलब्ध होते हैं। शैली की दृष्टि से भी कुछ अध्ययन व्यास शैली में लिखे गये हैं तो कुछ समास शैली में हैं। अतः ये सब तथ्य भी उत्तराध्ययन के एक कर्तृक मानने में विसंगति उत्पन्न करते हैं।

फिर भी इस आधार पर इतना तो माना ही जा सकता है कि उत्तराध्ययन के संकलनकर्ता सम्भवतः भद्रबाहु रहे हों। यह स्पष्ट है कि निर्युक्ति में उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों पर निर्युक्ति लिखी गई है अतः निर्युक्तिकार के समक्ष छत्तीस अध्ययन रूप उत्तराध्ययन उपस्थित था। यदि निर्युक्तियों के कर्ता श्रुतकेवली भद्रबाहु (प्रथम) को मानते

हैं तो हमें यह भी मानना होगा कि उत्तराध्ययन का संकलन उसके पूर्व हो चुका था और यह सम्भव है कि उसके संकलनकर्ता भी वे स्वयं हों, क्योंकि जिस प्रकार उन्होंने छंद सूत्रों की रचना कर उन पर निर्युक्ति लिखी उसी प्रकार उन्होंने उत्तराध्ययन का संकलन करके उस पर निर्युक्ति लिखी हो। यद्यपि उन्हें निर्युक्ति का कर्ता मानना विवादास्पद है। दूसरे यदि निर्युक्ति के कर्ता के रूप में गौतमगोत्रीय आर्यभद्र अथवा अन्य विद्वानों के मतानुसार भद्रबाहु (द्वितीय) को माना जाये तो भी यह मानने में कोई बाधा नहीं है कि उत्तराध्ययन के संकलन कर्ता पाइण्ण गोत्रीय आर्य भद्रबाहु रहे हों।

उत्तराध्ययन सूत्र के इकतीसवें अध्ययन की सत्रहवीं गाथा में दशादि के छब्बीस अध्ययनों का उल्लेख है अतः उत्तराध्ययन के संकलन को इन छेद सूत्रों से परवर्ती मानना होगा इन छेद सूत्रों के रचयिता स्वयं प्राच्य गोत्रीय भद्रबाहु स्वयं ही हैं अतः सम्भव है कि उन्होंने इन छेद सूत्रों की रचना के बाद उत्तराध्ययन का संकलन किया हो। अतः इससे उत्तराध्ययन के संकलन कर्ता भद्रबाहु प्रथम को मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

इस प्रकार यह निश्चित है दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार— इन छेद सूत्रों के कर्ता भद्रबाहु (प्रथम) हैं। साथ ही निशीथ सहित आचार चूला के कर्ता भी वे हैं— यह सम्भावना प्रकट की गई है जो निराधार नहीं है। इसी प्रकार उनके उत्तराध्ययन सूत्र के संकलनकर्ता होने की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है। किन्तु निर्युक्तियों के कर्ता, आर्य भद्रबाहु प्रथम हैं— यह विवादास्पद है। यदि निर्युक्तियों के कर्ता आर्य भद्रबाहु प्रथम नहीं हैं तो कौन हैं? इस प्रश्न पर मैंने अलग से एक स्वतन्त्र निबन्ध में विचार किया है, जो *Aspects of Jainology, Vol. 6*, डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित है। अतः इस निबन्ध को यहीं विराम देते हैं।

सन्दर्भ

१. आचार्य हस्तिमल जी, **जैनधर्म का मौलिक इतिहास**, भाग-२, जयपुर (राज०), १९७४ ई०, पृ० ३२७.
2. the author of the Niryukties Bhadrabahu is indentified by the Jainas with the patriarch of that name, who died 170 A.V. There can be no doubt that they are mistaken, For the account of the seven schisms (ninhaga) in the Āvaśyaka Niryukti, VIII 56-100, must have been written between 584 and 609 of the Vira era. There are the dates of the 7th and 8th schims of which only the former is mentioned in the Niryukti. It is therefore certain that the Niryukti was composed before 8th schism 609. A.V.

Pariśiṣṭaparva Introductory, p. 6.

उद्धृत, **जैनधर्म का मौलिक इतिहास**, भाग २, पृष्ठ ३५९.

३. थेरे अज्ज जसभदस्स तुंगियायण सगुत्तस्स इमे दो थेरा अज्जभदबाहु पाइणसगुत्ते थेरे अज्ज संभूति विजए माढरसगुत्ते .. थेरे अज्जभदबाहु पाइणसगोत्ते, थेरे अज्ज संभूयविजये माढरसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जभदबाहुस्स पाइणगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तं जहा-थेरे गोदासे १ थेरे अग्गिदत्ते २ थेरे जण्णदत्ते ३ थेरे सोमदत्ते ४ कासवगोत्ते णं। थेरेहिंतो गोदासे हिंतो कासवगुत्तेहिंतो इत्थ णं गोदासगणे नामं गणे निग्गाए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा— तामलित्तिया १ कोडीवरिसिया २ पोंडवद्धणिया ३ दासीखब्बडिया ४। — **कल्सुत्र थेरावली**, २०७.
४. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास**, भाग-२, पृ. ३७४.
५. (अ) गच्छाचार पइत्रा दोघट्टीवृत्ति, गाथा ८२ की वृत्ति, उद्धृत जैनधर्म का मौलिक इतिहास, भाग २, पृ. ३२७-३३०.
(ब) दक्षिणापथे प्रतिष्ठानपुरे भद्रबाहु वराहाह्वौ द्वौ द्विजो कुमारौ।— **प्रबन्धकोश**, पृ. २.
६. **प्रबन्धचिन्तामणि**, मेरुतुंग, प्रकाशक—सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १, शान्ति निकेतन, बंगाल १९३३ ई., पृ. १९४.
७. आसी उज्जेणी णयरे आयारियो भदबाहुनामेण। — **भावसंग्रह**, देवसेन, ५३.
८. अथास्ति विषये कान्ते पौण्डवधनेनामनि।
कोटिमत्तं पुरं पूर्वं देवकोट्टं च साम्प्रतम्॥ — **बृहत्कथाकोष**, हरिवेण, कथानक संख्या १३१, श्लोक १.
९. इह अज्जखेत्ति कउतुकपुरम्मि ... सिरिभदबाहु। **भद्रबाहुचरित्र**, रइधू, सं. राजाराम जैन, पृ. २.
१०. नेपाल वत्तिणीए य भयवं भदबाहुसामी अच्छंति चौहस्स पुक्वी। — **आवश्यकचूर्णि**, भाग-२, पत्रांक १७८.
११. छत्तीसे वरिससए विक्कम रायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे उप्पणो सेवडसंघो हु वल्लहीए ॥१३७॥
आसि उज्जेणिणयरे आयारियो भदबाहु णामेण।
जाणिय सुणिमित्तधरो भणिओ संघो मिओ तेण॥१३८॥
होइइ इह दुब्भिवखं बारहवरसाणि जाव पुण्णाणि।
देसंतराईं गच्छह णियणियसंघेण संजुत्ता॥१३९॥

एकं पुण संतिणामो संपत्तो वलहिणाऽमणयरीए।

बहुसीससंपउत्तो विसए सोरड्डए रम्मे।।१४१।।

भावसंग्रह, देवसेन-गाथा, १३७-३९, १४१, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, मुम्बई १९२१ ई०.

१२. प्राप्य भाद्रपदं देशं श्रीमदुज्जयिनीभवम् ।

चकारानशनं धीरः स दिनानि बहून्यलम् ।। ४३

बृहत्कथाकोश, कथानक संख्या १३१, श्लोक सं. २३ से ४३.

१३. सर्वसंघाधिपो जातो विसषाचार्यसंज्ञकः।

अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः।

दक्षिणापथदेशस्थपुत्राटविषयं ययौ।।४०।।

बृहत्कथाकोश, कथानक संख्या १३१, श्लोक ३८-४०.

१४. **कहाकोसु**, कर्ता— श्रीचन्द्र, प्रकाशक— प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद १९६६ ई०, संधि ४७, कडषक १०.

१५. **पुण्याख्व कथाकोश**, सम्पा०— रामचन्द्र मुमुक्षु, प्रकाशक— भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् १९९८, पृ० २२५-२२७ कथा क्रमांक ३८.

१६. बारहसहस मुणिहिं सहिउ भद्रबाहुरिसि चल्लियउ।

जंतउ जंतउ कयवयदिणहिं अडविहिं पत्तु गुणल्लियउ।।

भद्रबाहु, चाणक्य चन्द्रगुप्त कथानक, रङ्गू, सं.— डॉ. राजाराम जैन, १३, पृ० २६.

१७. देखें— **भद्रबाहुचरित्र**, रत्नमन्दी, परिच्छेद ३, श्लोक ४७ से ५३, प्रकाशक— दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत, १९६६ ई०.

१८. **भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक**, सम्पा०— राजाराम जैन, प्रस्तावना, ९-११.

१९. सो वि य चोदसपुव्वी बारस वासाइं जोगपडिवन्नो।

देज्ज न व देज्ज वा वायणं ति वाहिप्पऊ ताव।।

तित्थोगाली, पङ्कजं ७२५, **पङ्कणयसुत्ताइं**, सं. मुनिपुण्यविजय, महावीर जैन विद्यालय, बम्बई, १९८४ ई०.

२०. महापाणं ण पविट्ठो मि, इयाणिं पविट्ठो मि, तो न जाति वायणं दातुं।

— **आवश्यकचूर्णि**, भाग-२, पत्रांक १८७.

२१. महावंस (१०.६५; ३३. ४३-७९) के अनुसार श्रीलंका में बौद्धधर्म पहुँचने के पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व था। पाण्डुकाभय ने वहाँ जोनिव और गिरि नामक निग्रन्थों के लिए चैत्य बनवाये थे। बाद में मट्टगामिणी अभय ने निग्रन्थों का विनाश कर दिया।
२२. T.V.G. Sastri, "An Earliest Jaina Site in the Krishna Valley", *Arhat Vacana*, Vol. I (3-4), June-Sept. 89, p. 23-54.
२३. हीरालाल जैन, सम्पा०- **जैनशिलालेखसंग्रह**, भाग-१, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २८, मुम्बई १९२८ ई०, लेखांक १७-१८.
२४. महावीर सवितरि परिनिवृत्ते भगवत्परमर्षि गौतम गणधर साक्षाच्छिष्य लोहार्य्य-जम्बु-विष्णुदेवापराजित-गोवर्द्धन-भद्रबाहु-विशाख-प्रोष्ठिल कृत्तिकार्य्य-जयनाम सिद्धार्थ धृतिषेणबुद्धिलादि गुरुपरम्परीण वक्र (क्र) माभ्यागत महापुरुषसंकृत्तिकार्य्यसमवद्योति-तान्वय भद्रबाहु स्वामिना उज्जयन्यामष्टांग महानिमित्त तत्त्वज्ञेन त्रैकाल्यदर्शिना निमित्तेन द्वादशसंवत्सर-काल-वैषम्यमुपलभ्य कथिते सर्व्वस्सङ्घ उत्तरापथादक्षिणापथं प्रस्थितः। — पार्श्वनाथवसति शिलालेख, शकसंवत् ५२२, जैन शिलालेख संग्रह, भाग-१, लेखांक १.
२५. सप्ताश्विदेदसंख्यं, शककालमपास्य चैत्र शुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ, यवनपुरे सौम्य दिवासाद्ये।।
पंचसिद्धान्तिका अन्तिम प्रशस्ति, उद्धृत— **जैनधर्म का मौलिक इतिहास**, भाग-२, पृ० ३७२.
२६. चंदगुत्ति रायहु विक्खायहु विंदुसारणंदणु संजायहु।
तहु पुत्तु विअसोउ हुउ पुण्णउ णउलु णामु सुअ तहु उप्पण्णउ।
..... णामे चंदगुत्ति तहु णंदणु संजायउ सज्जणु आणंदणु।
भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक, १०-११.
२७. **तित्थोगालीपइत्रय** — गाथा ७१४-७५२, **पइण्णयसुत्ताइं**, सं०- मुनि पुण्यविजय जी, प्रकाशक, महावीर विद्यालय, बम्बई, सन् १९८४.
२८. (अ) देखें— **जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय**, डॉ. सागरमल जैन, पृ० २२०-२२१.
(ब) पेच्छइ परिब्भमन्तो दाहिण देसे सियम्बर पणओ। — **पउमच्चरियं (विमलसूरि)** प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, २२/७८.
२९. यापनि (नी) य निग्रन्थकुर्चकानां। — **जैन शिलालेखसंग्रह**, भाग २, लेख क्रमांक ९९.

३०. णंदी व णंदिमित्तो बिदिओ अवराजिदो तइज्जो य। गोवद्धणो चउत्थो पंचमओ भद्दबाहु त्ति। —तिलोयपणत्ति, ४/१४८२.

३१. (अ) **बृहत्कथाकोश** (हरिषेण), कथानक १३१, श्लोक ४५-८१.

(ब) **भावसंग्रह** (देवसेन), गाथा ५२-७०.

टिप्पणी— ज्ञातव्य है कि जहाँ हरिषेण ने रामिल्ल, स्थविर एवं स्थूलभद्र नामक तीन आचार्यों का भद्रबाहु के शिष्य के रूप में उल्लेखित किया है, वहाँ भावसेन ने मात्र शान्त्याचार्य का उल्लेख किया है। इस प्रकार दोनों कथानकों में नामों के सम्बन्ध में अन्तर्विरोध है।

३२. निज्जवण भद्दगुत्ते वीसुं पढ्ढणं च तस्स पुव्वगयं।

पव्वाविओय भाया रक्खिअखमणेहिं जणओ अ।।

— **आवश्यकनिर्युक्ति**, गाथा ७७६.

३३. **बृहत्कथाकोश**, कथानक १३१, श्लोक ६२.

३४. **जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय**, सागरमल जैन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. ४४-४५ एवं ३६३.

३५. (अ) **भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक**, रड्धू, १७, १८, २१, २२, २३.

(ब) **भद्रबाहुचरित्र**, रत्ननन्दी, परिचछेद ३, श्लोक ५६-८४.

३६. **जैनधर्म का मौलिक इतिहास**, पृ. ३२६-३२७, ३४३-३४४.

३७. **भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक**, प्रस्तावना, पृष्ठ ५-६ एवं ९-१२.

३८. **जैनशिलालेखसंग्रह**, भाग २, लेख क्रमांक ९६.

३९. देखें (अ) **कल्पसूत्र स्थविरावलि** में विस्तृत वाचना उल्लेखित शिवभूति के शिष्य काश्यपगोत्रीय आर्यभद्रगुप्त और गौतमगोत्रीय आर्यभद्र।

(ब) आचार्य भद्रान्वयभूषणस्य — **जैनशिलालेखसंग्रह**, भाग-२, पृ. ५७.

४०. (अ) थेरस्स णं अज्ज सिवभूइस्स कुच्छगुत्तस्स अज्ज भद्दे थेरे अंतेवासी कासव गुत्ते। थेरस्स अज्ज कालए गोयमगुत्तस्स इमे दो थेर-थेरे अज्जसंपलिए थेरे अज्ज भद्दे। थेरे अज्ज जेहिल्लस्स ... अज्ज विण्हू थेरे। —**कल्पसूत्र स्थविरावली**, २०-२७.

(ब) ततो वंदे य भद्दगुत्तं। वड्डउ वायगवंसो रेवइनक्खत्त नामाणं — **नन्दिसूत्र, स्थविरावली**, ३१, ३५.

४१. सद्धर्मकरणपरस्य श्वेतपट्टमहाश्रमणसंघस्य। — **जैनशिलालेखसंग्रह**, भाग-३,

लेखक्रमांक ९८.

४२. (अ) **तित्थोगालीपइन्नयं**, सं. मुनिपुण्यविजयजी, गाथा ७०२-८०६.
 (ब) **आवश्यकचूर्णि**, भाग-२, पृ. १७८, ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, १९२९ ई०.
४३. वंदामि भद्ब्राहुं पाईणं चरिमसयलसुयनाणि।
 सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे।। — **दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति**, १.
४४. तेण भगवता आयारकप्प, दसाकप्प, ववहारा य नवमपुव्वनी संदभूता निज्जूढा।
 (ज्ञातव्य है कि निशीथ का एक नाम आचारप्रकल्प भी रहा।) **पंचकल्पचूर्णि**, पत्र १.
४५. (अ) अंगप्पभवा जिणभासिया य पत्तेयबुद्धसंवाया।
 बंधे मुक्खे य कया छत्तीसं उत्तरज्झयणा।। — **उत्तराध्ययननिर्युक्ति** ४.
 (ब) कम्मप्पवायपुव्वे सत्तरसे पाहुडंमि जं सुत्तं। — **उत्तराध्ययननिर्युक्ति**, ६७.
४६. **उत्तराध्ययनसूत्रम्**, सम्पादक— उपाध्याय आत्मारामजी, प्रस्तावना, पृ. १६-१७.

